

प्रवचनसार पद्यानुवाद

ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

मंगलाचरण एवं पीठिका

सुर असुर इन्द्र नरेन्द्र वंदित कर्ममल निर्मलकरन ।
 वृषतीर्थ के करतार श्री वर्द्धमान जिन शत-शत नमन ॥१॥
 अवशेष तीर्थकर तथा सब सिद्धगण को कर नमन ।
 मैं भक्तिपूर्वक नमूँ पंचाचारयुत सब श्रमणजन ॥२॥
 उन सभी को युगपत तथा प्रत्येक को प्रत्येक को ।
 मैं नमूँ विदमान मानस क्षेत्र के अरहंत को ॥३॥
 अरहंत सिद्धसमूह गणधरदेवयुत सब सूरिगण ।
 अर सभी पाठक साधुगण इन सभी को करके नमन ॥४॥
 परिशुद्ध दर्शनज्ञानयुत समभाव आश्रम प्राप्त कर ।
 निर्वाणपद दातार समताभाव को धारण करूँ ॥५॥
 निर्वाण पावें सुर-असुर-नरराज के वैभव सहित ।
 यदि ज्ञान-दर्शनपूर्वक चारित्र सम्यक् प्राप्त हो ॥६॥
 चारित्र ही बस धर्म है वह धर्म समताभाव है ।
 दृगमोह-क्षोभविहीन निज परिणाम समताभाव है ॥७॥
 जिसकाल में जो दरव जिस परिणाम से हो परिणमित ।
 हो उसीमय वह धर्मपरिणत आतमा ही धर्म है ॥८॥
 स्वभाव से परिणाममयजिय अशुभ परिणत हो अशुभ ।
 शुभभाव परिणत शुभ तथा शुधभाव परिणत शुद्ध है ॥९॥
 परिणाम बिन ना अर्थ है अर अर्थ बिन परिणाम ना ।
 अस्तित्वमय यह अर्थ है बस द्रव्यगुणपर्यायमय ॥१०॥
 प्राप्त करते मोक्षसुख शुद्धोपयोगी आतमा ।
 पर प्राप्त करते स्वर्गसुख हि शुभोपयोगी आतमा ॥११॥

अशुभोपयोगी आतमा हो नारकी तिर्यग कुनर ।
 संसार में रुलता रहे अर सहस्रों दुख भोगता ॥१२॥

शुद्धोपयोगाधिकार

शुद्धोपयोगी जीव के है अनूपम आत्मोत्थसुख ।
 है नंत अतिशयवंत विषयातीत अर अविच्छिन्न है ॥१३॥
 हो वीतरागी संयमी तपयुक्त अर सूत्रार्थ विद् ।
 शुद्धोपयोगी श्रमण के समभाव भवसुख-दुःख में ॥१४॥
 शुद्धोपयोगी जीव जग में घात घातीकर्मरज ।
 स्वयं ही सर्वज्ञ हो सब ज्ञेय को हैं जानते ॥१५॥
 त्रैलोक्य अधिपति पूज्य लब्धस्वभाव अर सर्वज्ञजिन ।
 स्वयं ही हो गये तातैं स्वयम्भू सब जन कहें ॥१६॥
 यद्यपि उत्पाद बिन व्यय व्यय बिना उत्पाद है ।
 तथापी उत्पादव्ययथिति का सहज समवाय है ॥१७॥
 सभी द्रव्यों में सदा ही होंय रे उत्पाद-व्यय ।
 ध्रुव भी रहे प्रत्येक वस्तु रे किसी पर्याय से ॥१८॥
 असुरेन्द्र और सुरेन्द्र को जो इष्ट सर्व वरिष्ठ हैं ।
 उन सिद्ध के श्रद्धालुओं के सर्व कष्ट विनष्ट हों ॥१९॥
 अतीन्द्रिय हो गये जिनके ज्ञान सुख वे स्वयंभू ।
 जिन क्षीणघातिकर्म तेज महान उत्तम वीर्य हैं ॥२०॥
 अतीन्द्रिय हो गये हैं जिन स्वयंभू बस इसलिए ।
 केवली के देहगत सुख-दुःख नहीं परमार्थ से ॥२०॥

ज्ञानाधिकार

केवली भगवान के सब द्रव्य गुण-पर्याययुत ।
 प्रत्यक्ष हैं अवग्रहादिपूर्वक वे उन्हें नहीं जानते ॥२१॥
 सर्वात्मगुण से सहित हैं अर जो अतीन्द्रिय हो गये ।
 परोक्ष कुछ भी है नहीं उन केवली भगवान के ॥२२॥

यह आत्म ज्ञानप्रमाण है अर ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है ।
 हैं ज्ञेय लोकालोक इस विधि सर्वगत यह ज्ञान है ॥२३॥
 अरे जिनकी मान्यता में आत्म ज्ञानप्रमाण ना ।
 तो ज्ञान से वह हीन अथवा अधिक होना चाहिए ॥२४॥
 ज्ञान से हो हीन अचेतन ज्ञान जाने किसतरह ।
 ज्ञान से हो अधिक जिय किसतरह जाने ज्ञान बिन ॥२५॥
 हैं सर्वगत जिन और सर्व पदार्थ जिनवरगत कहे ।
 जिन ज्ञानमय बस इसलिए सब ज्ञेय जिनके विषय हैं ॥२६॥
 रे आतमा के बिना जग में ज्ञान हो सकता नहीं ।
 है ज्ञान आतम किन्तु आतम ज्ञान भी है अन्य भी ॥२७॥
 रूप को ज्यों चक्षु जाने परस्पर अप्रविष्ट रह ।
 त्यों आत्म ज्ञानस्वभाव अन्य पदार्थ उसके ज्ञेय हैं ॥२८॥
 प्रविष्ट रह अप्रविष्ट रह ज्यों चक्षु जाने रूप को ।
 त्यों अतीन्द्रिय आत्मा भी जानता सम्पूर्ण जग ॥२९॥
 ज्यों दूध में है व्याप्त नीलम रत्न अपनी प्रभा से ।
 त्यों ज्ञान भी है व्याप्त रे निःशेष ज्ञेय पदार्थ में ॥३०॥
 वे अर्थ ना हों ज्ञान में तो ज्ञान न हो सर्वगत ।
 ज्ञान है यदि सर्वगत तो क्यों न हों वे ज्ञानगत ॥३१॥
 केवली भगवान पर ना ग्रहे छोड़े परिणमें ।
 चहुं ओर से सम्पूर्णतः निरवशेष वे सब जानते ॥३२॥
 श्रुतज्ञान से जो जानते ज्ञायकस्वभावी आतमा ।
 श्रुतकेवली उनको कहें ऋषिगण प्रकाशक लोक के ॥३३॥
 जिनवरकथित पुद्गल वचन ही सूत्र उसकी ज्ञप्ति ही ।
 है ज्ञान उसको केवली जिनसूत्र की ज्ञप्ति कहें ॥३४॥
 जो जानता सो ज्ञान आतम ज्ञान से ज्ञायक नहीं ।
 स्वयं परिणत ज्ञान में सब अर्थ थिति धारण करें ॥३५॥

जीव ही है ज्ञान ज्ञेय त्रिधावर्णित द्रव्य हैं ।
 वे द्रव्य आतम और पर परिणाम से संबद्ध हैं ॥३६॥
 असद्भूत हों सद्भूत हों सब द्रव्य की पर्याय सब ।
 सद्ज्ञान में वर्तमानवत् ही हैं सदा वर्तमान सब ॥३७॥
 पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या नष्ट जो हो गई हैं ।
 असद्भावी वे सभी पर्याय ज्ञानप्रत्यक्ष हैं ॥३८॥
 पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या हो गई हैं नष्ट जो ।
 फिर ज्ञान की क्या दिव्यता यदि ज्ञात होवें नहीं वो ॥३९॥
 जो इन्द्रियगोचर अर्थ को ईहादिपूर्वक जानते ।
 वे परोक्ष पदार्थ को जाने नहीं जिनवर कहें ॥४०॥
 सप्रदेशी अप्रदेशी मूर्त और अमूर्त को ।
 अनुत्पन्न विनष्ट को जाने अतीन्द्रिय ज्ञान ही ॥४१॥
 ज्ञेयार्थमय जो परिणमे ना उसे क्षायिक ज्ञान हो ।
 कहें जिनवरदेव कि वह कर्म का ही अनुभवी ॥४२॥
 जिनवर कहें उसके नियम से उदयगत कर्मांश हैं ।
 वह राग-द्वेष-विमोह बस नित वंध का अनुभव करे ॥४३॥
 यत्न बिन ज्यों नारियों में सहज मायाचार त्यों ।
 हो विहार उठना-बैठना अर दिव्यध्वनि अरिहंत के ॥४४॥
 पुण्यफल अरिहंत जिन की क्रिया औदयिकी कही ।
 मोहादि विरहित इसलिए वह क्षायिकी मानी गई ॥४५॥
 यदी स्वयं स्वभाव से शुभ-अशुभरूप न परिणमें ।
 तो सर्व जीवनिकाय के संसार भी ना सिद्ध हो ॥४६॥
 जो तात्कालिक अतात्कालिक विचित्र विषमपदार्थ को ।
 चहुं ओर से इक साथ जाने वही क्षायिक ज्ञान है ॥४७॥
 जाने नहीं युगपद् त्रिकालिक अर्थ जो त्रैलोक्य के ।
 वह जान सकता है नहीं पर्यय सहित इक द्रव्य को ॥४८॥

इक द्रव्य को पर्यय सहित यदि नहीं जाने जीव तो ।
 फिर जान कैसे सकेगा इक साथ द्रव्यसमूह को ॥४९॥
 पदार्थ का अवलम्ब ले जो ज्ञान क्रमशः जानता ।
 वह सर्वगत अर नित्य क्षायिक कभी हो सकता नहीं ॥५०॥
 सर्वज्ञ जिन के ज्ञान का माहात्म्य तीनों काल के ।
 जाने सदा सब अर्थ युगपद् विषम विविध प्रकार के ॥५१॥
 सवार्थ जाने जीव पर उनरूप न परिणमित हो ।
 बस इसलिए है अबंधक ना ग्रहे ना उत्पन्न हो ॥५२॥
 नमन करते जिन्हें नरपति सुर-असुरपति भक्तगण ।
 मैं भी उन्हीं सर्वज्ञजिन के चरण में करता नमन ॥२॥*

सुखाधिकार

मूर्त और अमूर्त इन्द्रिय अर अतीन्द्रिय ज्ञान-सुख ।
 इनमें अमूर्त अतीन्द्रियी ही ज्ञान-सुख उपादेय हैं ॥५३॥
 अमूर्त को अर मूर्त में भी अतीन्द्रिय प्रच्छन्न को ।
 स्व-पर को सर्वार्थ को जाने वही प्रत्यक्ष है ॥५४॥
 यह मूर्ततनगत जीव मूर्तपदार्थ जाने मूर्त से ।
 अवग्रहादिकपूर्वक अर कभी जाने भी नहीं ॥५५॥
 पौद्गलिक स्पर्श रस गंध वर्ण अर शब्दादि को ।
 भी इन्द्रियाँ इक साथ देखो ग्रहण कर सकती नहीं ॥५६॥
 इन्द्रियाँ परद्रव्य उनको आत्मस्वभाव नहीं कहा ।
 अर जो उन्हीं से ज्ञात वह प्रत्यक्ष कैसे हो सके ? ॥५७॥
 जो दूसरों से ज्ञात हो बस वह परोक्ष कहा गया ।
 केवल स्वयं से ज्ञात जो वह ज्ञान ही प्रत्यक्ष है ॥५८॥
 स्वयं से सर्वांग से सर्वार्थग्राही मलरहित ।
 अवग्रहादि विरहित ज्ञान ही सुख कहा जिनवरदेव ने ॥५९॥

अरे केवलज्ञान सुख परिणाममय जिनवर कहा ।
 क्षय हो गये हैं घातिया रे खेद भी उसके नहीं ॥६०॥
 अर्थान्तगत है ज्ञान लोकालोक विस्तृत दृष्टि है ।
 नष्ट सर्व अनिष्ट एवं इष्ट सब उपलब्ध हैं ॥६१॥
 घातियों से रहित सुख ही परमसुख यह श्रवण कर ।
 भी न करें श्रद्धान तो वे अभवि भवि श्रद्धा करें ॥६२॥
 नरपती सुरपति असुरपति इन्द्रियविषयदवदाह से ।
 पीड़ित रहें सह सके ना रमणीक विषयों में रमें ॥६३॥
 पंचेन्द्रियविषयों में रती वे हैं स्वभाविक दुःखीजन ।
 दुःख के बिना विषविषय में व्यापार हो सकता नहीं ॥६४॥
 इन्द्रिय विषय को प्राप्त कर यह जीव स्वयं स्वभाव से ।
 सुखरूप हो पर देह तो सुखरूप होती ही नहीं ॥६५॥
 स्वर्ग में भी नियम से यह देह देही जीव को ।
 सुख नहीं दे यह जीव ही बस स्वयं सुख-दुखरूप हो ॥६६॥
 तिमिरहर हो दृष्टि जिसकी उसे दीपक क्या करें ।
 जब जिय स्वयं सुखरूप हो इन्द्रिय विषय तब क्या करें ॥६७॥
 जिसतरह आकाश में रवि उष्ण तेजरु देव है ।
 बस उसतरह ही सिद्धगण सब ज्ञान सुखरु देव हैं ॥६८॥
 प्राधान्य है त्रैलोक्य में ऐश्वर्य ऋद्धि सहित हैं ।
 तेज दर्शन ज्ञान सुख युत पूज्य श्री अरिहंत हैं ॥३॥*
 हो नमन बारम्बार सुरनरनाथ पद से रहित जो ।
 अपुनर्भावी सिद्धगण गुण से अधिक भव रहित जो ॥४॥*

शुभपरिणामाधिकार

देव-गुरु-यति अर्चना अर दान उपवासादि में ।
 अर शील में जो लीन शुभ उपयोगमय वह आत्मा ॥६९॥

अरे शुभ उपयोग से जो युक्त वह तिर्यग्गति ।
 अर देव मानुष गति में रह प्राप्त करता विषयसुख ॥७०॥
 उपदेश से है सिद्ध देवों के नहीं है स्वभावसुख ।
 तनवेदना से दुखी वे रमणीक विषयों में रमे ॥७१॥
 नर-नारकी तिर्यच सुर यदि देहसंभव दुःख को ।
 अनुभव करें तो फिर कहो उपयोग कैसे शुभ-अशुभ ? ॥७२॥
 वज्रधर अर चक्रधर सब पुण्यफल को भोगते ।
 देहादि की वृद्धि करें पर सुखी हों ऐसे लगे ॥७३॥
 शुभभाव से उत्पन्न विध-विध पुण्य यदि विद्यमान हैं ।
 तो वे सभी सुरलोक में विषयेषणा पैदा करें ॥७४॥
 अरे जिनकी उदित तृष्णा दुःख से संतप्त वे ।
 हैं दुखी फिर भी आमरण वे विषयसुख ही चाहते ॥७५॥
 इन्द्रियसुख सुख नहीं दुख है विषम बाधा सहित है ।
 है बंध का कारण दुखद परतंत्र है विच्छिन्न है ॥७६॥
 पुण्य-पाप में अन्तर नहीं है - जो न माने बात ये ।
 संसार-सागर में भ्रमों मद-मोह से आच्छन्न वे ॥७७॥
 विदितार्थजन परद्रव्य में जो राग-द्वेष नहीं करें ।
 शुद्धोपयोगी जीव वे तनजनित दुःख को क्षय करें ॥७८॥
 सब छोड़ पापारंभ शुभचारित्र में उद्यत रहें ।
 पर नहीं छोड़े मोह तो शुद्धात्मा को ना लहें ॥७९॥
 हो स्वर्ग अर अपवर्ग पथदर्शक जिनेश्वर आपही ।
 लोकाग्रथित तपसंयमी सुर-असुर वंदित आपही ॥५॥*
 देवेन्द्रों के देव यतिवरवृषभ तुम त्रैलोक्यगुरु ।
 जो नमें तुमको वे मनुज सुख संपदा अक्षय लहें ॥६॥*
 द्रव्य गुण पर्याय से जो जानते अरहंत को ।
 वे जानते निज आत्मा दृगमोह उनका नाश हो ॥८०॥

जो जीव व्यपगत मोह हो - निज आत्म उपलब्धि करें ।
 वे छोड़ दें यदि राग रुष शुद्धात्म उपलब्धि करें ॥८१॥
 सर्व ही अरहंत ने विधि नष्ट कीने जिस विधी ।
 सबको बताई वही विधि हो नमन उनको सब विधी ॥८२॥
 अरे समकित ज्ञान सम्यक्चरण से परिपूर्ण जो ।
 सत्कार पूजा दान के वे पात्र उनको नमन हो ॥७॥*
 द्रव्यादि में जो मूढ़ता वह मोह उसके जोर से ।
 कर राग-रुष परद्रव्य में जिय क्षुब्ध हो चहुंओर से ॥८३॥
 बंध होता विविध मोहरु क्षोभ परिणत जीव के ।
 बस इसलिए सम्पूर्णतः वे नाश करने योग्य हैं ॥८४॥
 अयथार्थ जाने तत्त्व को अति रती विषयों के प्रति ।
 और करुणाभाव ये सब मोह के ही चिह्न हैं ॥८५॥
 तत्त्वार्थ को जो जानते प्रत्यक्ष या जिनशास्त्र से ।
 दृगमोह क्षय हो इसलिए स्वाध्याय करना चाहिए ॥८६॥
 द्रव्य-गुण-पर्याय ही हैं अर्थ सब जिनवर कहें ।
 अर द्रव्य गुण-पर्यायमय ही भिन्न वस्तु है नहीं ॥८७॥
 जिनदेव का उपदेश यह जो हने मोहरु क्षोभ को ।
 वह बहुत थोड़े काल में ही सब दुखों से मुक्त हो ॥८८॥
 जो जानता ज्ञानात्मक निजरूप अर परद्रव्य को ।
 वह नियम से ही क्षय करे दृगमोह एवं क्षोभ को ॥८९॥
 निर्मोह होना चाहते तो गुणों की पहिचान से ।
 तुम भेद जानो स्व-पर में जिनमार्ग के आधार से ॥९०॥
 द्रव्य जो सविशेष सत्तामयी उसकी दृष्टि ना ।
 तो श्रमण हो पर उस श्रमण से धर्म का उद्भव नहीं ॥९१॥
 आगमकुशल दृगमोहहत आरूढ़ हों चारित्र में ।
 बस उन महात्मन श्रमण को ही धर्म कहते शास्त्र में ॥९२॥

देखकर संतुष्ट हो उठ नमन वन्दन जो करे।
वह भव्य उनसे सदा ही सद्धर्म की प्राप्ति करे ॥८॥*
उस धर्म से तिर्यंच नर नरसुरगति को प्राप्त कर।
ऐश्वर्य-वैभववान अर पूरण मनोरथवान हों ॥९॥*

ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनमहाधिकार

द्रव्यसामान्यप्रज्ञापनाधिकार

सम्यक् सहित चारित्रयुत मुनिराज में मन जोड़कर।
नमकर कहूँ संक्षेप में सम्यक्त्व का अधिकार यह ॥१०॥*
गुणात्मक हैं द्रव्य एवं अर्थ हैं सब द्रव्यमय।
गुण-द्रव्य से पर्यायें पर्ययमूढ़ ही हैं परसमय ॥१३॥
पर्याय में ही लीन जिय परसमय आत्मस्वभाव में।
थित जीव ही हैं स्वसमय - यह कहा जिनवरदेव ने ॥१४॥
निजभाव को छोड़े बिना उत्पादव्ययध्रुवयुक्त गुण-
पर्ययसहित जो वस्तु है वह द्रव्य है जिनवर कहें ॥१५॥
गुण-चित्रमयपर्याय से उत्पादव्ययध्रुवभाव से।
जो द्रव्य का अस्तित्व है वह एकमात्र स्वभाव है ॥१६॥
रे सर्वगत सत् एक लक्षण विविध द्रव्यों का कहा।
जिनधर्म का उपदेश देते हुए जिनवरदेव ने ॥१७॥
स्वभाव से ही सिद्ध सत् जिन कहा आगमसिद्ध है।
यह नहीं माने जीव जो वे परसमय पहिचानिये ॥१८॥
स्वभाव में थित द्रव्य सत् सत् द्रव्य का परिणाम जो।
उत्पादव्ययध्रुवसहित है वह ही पदार्थस्वभाव है ॥१९॥
भंगबिन उत्पाद ना उत्पाद बिन ना भंग हो।
उत्पादव्यय हो नहीं सकते एक ध्रौव्यपदार्थ बिन ॥२०॥
पर्याय में उत्पादव्ययध्रुव द्रव्य में पर्यायें हैं।
बस इसलिए तो कहा है कि वे सभी इक द्रव्य हैं ॥२०१॥

उत्पादव्ययथिति द्रव्य में समवेत हों प्रत्येक पल।
बस इसलिए तो कहा है इन तीनमय हैं द्रव्य सब ॥१०२॥
उत्पन्न होती अन्य एवं नष्ट होती अन्य ही।
पर्याय किन्तु द्रव्य ना उत्पन्न हो ना नष्ट हो ॥१०३॥
गुण से गुणान्तर परिणामें द्रव्य स्वयं सत्ता अपेक्षा।
इसलिए गुणपर्याय ही हैं द्रव्य जिनवर ने कहा ॥१०४॥
यदि द्रव्य न हो स्वयं सत् तो असत् होगा नियम से।
किम होय सत्ता से पृथक् जब द्रव्य सत्ता है स्वयं ॥१०५॥
जिनवीर के उपदेश में पृथक्त्व भिन्नप्रदेशता।
अतद्भाव ही अन्यत्व है तो अतत् कैसे एक हों ॥१०६॥
सत् द्रव्य सत् गुण और सत् पर्याय सत् विस्तार है।
तदरूपता का अभाव ही तद्-अभाव अर अतद्भाव है ॥१०७॥
द्रव्य वह गुण नहीं अर गुण द्रव्य ना अतद्भाव यह।
सर्वथा जो अभाव है वह नहीं अतद्भाव है ॥१०८॥
परिणाम द्रव्य स्वभाव जो वह अपृथक् सत्ता से सदा।
स्वभाव में थित द्रव्य सत् जिनदेव का उपदेश यह ॥१०९॥
पर्याय या गुण द्रव्य के बिन कभी भी होते नहीं।
द्रव्य ही है भाव इससे द्रव्य सत्ता है स्वयं ॥११०॥
पूर्वोक्त द्रव्यस्वभाव में उत्पाद सत् नयद्रव्य से।
पर्यायनय से असत् का उत्पाद होता है सदा ॥१११॥
परिणामित जिय नर देव हो या अन्य हो पर कभी भी।
द्रव्यत्व को छोड़े नहीं तो अन्य होवे किसतरह ॥११२॥
मनुज देव नहीं है अथवा देव मनुजादिक नहीं।
ऐसी अवस्था में कहो कि अनन्य होवे किसतरह ॥११३॥
द्रव्य से है अनन्य जिय पर्याय से अन-अन्य है।
पर्याय तन्मय द्रव्य से तत्समय अतः अनन्य है ॥११४॥

अपेक्षा से द्रव्य 'है' 'है नहीं' 'अनिर्वचनीय है' ।
 'है है नहीं' इसतरह ही अवशेष तीनों भंग हैं ॥११५॥
 पर्याय शाश्वत नहीं परन्तु है विभावस्वभाव तो ।
 है अफल परमधरम परन्तु क्रिया अफल नहीं कही ॥११६॥
 नाम नामक कर्म जिय का पराभव कर जीव को ।
 नर नारकी तिर्यच सुर पर्याय में दाखिल करे ॥११७॥
 नाम नामक कर्म से पशु नरक सुर नर गति में ।
 स्वकर्म परिणत जीव को निजभाव उपलब्धि नहीं ॥११८॥
 उत्पाद-व्यय ना प्रतिक्षण उत्पादव्ययमय लोक में ।
 अन-अन्य हैं उत्पाद-व्यय अर अभेद से हैं एक भी ॥११९॥
 स्वभाव से ही अवस्थित संसार में कोई नहीं ।
 संसरण करते जीव की यह क्रिया ही संसार है ॥१२०॥
 कर्ममल से मलिन जिय पा कर्मयुत परिणाम को ।
 कर्मबंधन में पड़े परिणाम ही बस कर्म है ॥१२१॥
 परिणाम आत्मा और वह ही कही जीवमयी क्रिया ।
 वह क्रिया ही है कर्म जिय द्रवकर्म का कर्ता नहीं ॥१२२॥
 करम एवं करमफल अर ज्ञानमय यह चेतना ।
 ये तीन इनके रूप में ही परिणामे यह आत्मा ॥१२३॥
 ज्ञान अर्थविकल्प जो जिय करे वह ही कर्म है ।
 अनेकविध वह कर्म है अर करमफल सुख-दुःख हैं ॥१२४॥
 ज्ञान कर्मरु कर्मफल परिणाम तीन प्रकार हैं ।
 आत्मा परिणाममय परिणाम ही हैं आत्मा ॥१२५॥
 जो श्रमण निश्चय करे कर्ता करम कर्मरु कर्मफल ।
 ही जीव ना पररूप हो शुद्धात्म उपलब्धि करे ॥१२६॥

द्रव्यविशेषप्रज्ञापनाधिकार

द्रव्य जीव अजीव हैं जिय चेतना उपयोगमय ।
 पुद्गलादी अचेतन हैं अतःएव अजीव हैं ॥१२७॥
 आकाश में जो भाग पुद्गल जीव धर्म अधर्म से ।
 अर काल से समृद्ध है वह लोक शेष अलोक है ॥१२८॥
 जीव अर पुद्गलमयी इस लोक में परिणमन से ।
 भेद से संघात से उत्पाद-व्यय-ध्रुवभाव हों ॥१२९॥
 जिन चिह्नों से द्रव ज्ञात हों रे जीव और अजीव में ।
 वे मूर्त और अमूर्त गुण हैं अतद्भावी द्रव्य से ॥१३०॥
 इन्द्रियों से ग्राह्य बहुविधि मूर्त गुण पुद्गलमयी ।
 अमूर्त हैं जो द्रव्य उनके गुण अमूर्तिक जानना ॥१३१॥
 सूक्ष्म से पृथ्वी तलक सब पुद्गलों में जो रहें ।
 स्पर्श रस गंध वर्ण गुण अर शब्द सब पर्याय हैं ॥१३२॥
 आकाश का अवगाह धर्माधर्म के गमनागमन ।
 स्थानकारणता कहे ये सभी जिनवरदेव ने ॥१३३॥
 उपयोग आतमराम का अर वर्तना गुण काल का ।
 है अमूर्त द्रव्यों के गुणों का कथन यह संक्षेप में ॥१३४॥ युगलम् ॥
 हैं बहुप्रदेशी जीव पुद्गल गगन धर्माधर्म सब ।
 है अप्रदेशी काल जिनवरदेव के हैं ये वचन ॥१३५॥
 कालद्रव को छोड़कर अवशेष अस्तिकाय हैं ।
 बहुप्रदेशीपना ही है काय जिनवर ने कहा ॥१३६॥
 गगन लोकालोक में अर लोक धर्माधर्म से ।
 है व्याप्त अर अवशेष दो से काल पुद्गलजीव हैं ॥१३६॥
 जिसतरह परमाणु से है नाप गगन प्रदेश का ।
 बस उसतरह ही शेष का परमाणु रहित प्रदेश से ॥१३७॥

पुद्गलाणु मंदगति से चले जितने काल में।
 रे एक गगनप्रदेश पर परदेश विरहित काल वह ॥१३८॥
 परमाणु गगनप्रदेश लंघन करे जितने काल में।
 उत्पन्न-ध्वंसी समय परापर रहे वह ही काल है ॥१३९॥
 अणु रहे जितने गगन में वह गगन ही परदेश है।
 अरे उस परदेश में ही रह सकें परमाणु सब ॥१४०॥
 एक दो या बहुत से परदेश असंख्य अनंत हैं।
 काल के हैं समय अर अवशेष के परदेश हैं ॥१४१॥
 इस समय में उत्पाद-व्यय यदि काल द्रव में प्राप्त हैं।
 तो काल द्रव्यस्वभावथित ध्रुवभावमय ही क्यों न हो ॥१४२॥
 इक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम के जो अर्थ हैं।
 वे सदा हैं बस इसलिए कालाणु का सद्भाव है ॥१४३॥
 जिस अर्थ का इस लोक में ना एक ही परदेश हो।
 वह शून्य ही है जगत में परदेश बिन न अर्थ हो ॥१४४॥

ज्ञान-ज्ञेयविभागाधिकार

सप्रदेशपदार्थनिष्ठित लोक शाश्वत जानिये।
 जो उसे जाने जीव वह चतुप्राण से संयुक्त है ॥१४५॥
 इन्द्रिय बल अर आयु श्वासोच्छ्वास ये ही जीव के।
 हैं प्राण इनसे लोक में सब जीव जीवे भव भ्रमे ॥१४६॥
 पाँच इन्द्रिय प्राण मन-वच-काय त्रय बल प्राण हैं।
 आयु श्वासोच्छ्वास जिनवर कहे ये दश प्राण हैं ॥१२॥*
 जीव जीवे जियेगा एवं अभीतक जिया है।
 इन चार प्राणों से परन्तु प्राण ये पुद्गलमयी ॥१४७॥
 मोहादि कर्मों से बंधा यह जीव प्राणों को धरे।
 अर कर्मफल को भोगता अर कर्म का बंधन करे ॥१४८॥

• आचार्य जयसेन की टीका में प्राप्त गाथा १२

मोह एवं द्वेष से जो स्व-पर को बाधा करे।
 पूर्वोक्त ज्ञानावरण आदि कर्म वह बंधन करे ॥१४९॥
 ममता न छोड़े देह विषयक जबतलक यह आतमा।
 कर्ममल से मलिन हो पुन-पुनः प्राणों को धरे ॥१५०॥
 उपयोगमय निज आतमा का ध्यान जो धारण करे।
 इन्द्रियजयी वह विरतकर्मा प्राण क्यों धारण करें ॥१५१॥
 अस्तित्व निश्चित अर्थ की अन्य अर्थ के संयोग से।
 जो अर्थ वह पर्याय जो संस्थान आदिक भेदमय ॥१५२॥
 तिर्यच मानव देव नारक नाम नामक कर्म के।
 उदय से पर्याय होवें अन्य-अन्य प्रकार कीं ॥१५३॥
 त्रिधा निज अस्तित्व को जाने जो द्रव्यस्वभाव से।
 वह हो न मोहित जान लो अन-अन्य द्रव्यों में कभी ॥१५४॥
 आतमा उपयोगमय उपयोग दर्शन-ज्ञान हैं।
 अर शुभ-अशुभ के भेद भी तो कहे हैं उपयोग के ॥१५५॥
 उपयोग हो शुभ पुण्यसंचय अशुभ हो तो पाप का।
 शुभ-अशुभ दोनों ही न हो तो कर्म का बंधन न हो ॥१५६॥
 श्रद्धान सिध-अणगार का अर जानना जिनदेव को।
 जीवकरुणा पालना बस यही है उपयोग शुभ ॥१५७॥
 अशुभ है उपयोग वह जो रहे नित उन्मार्ग में।
 श्रवण-चिंतन-संगति विपरीत विषय-कषाय में ॥१५८॥
 आतमा ज्ञानात्मक अनद्रव्य में मध्यस्थ हो।
 ध्यावे सदा ना रहे वह नित शुभ-अशुभ उपयोग में ॥१५९॥
 देह मन वाणी न उनका करण या कर्ता नहीं।
 ना कराऊँ मैं कभी भी अनुमोदना भी ना करूँ ॥१६०॥
 देह मन वच सभी पुद्गल द्रव्यमय जिनवर कहे।
 ये सभी जड़ स्कन्ध तो परमाणुओं के पिण्ड हैं ॥१६१॥

मैं नहीं पुद्गलमयी मैंने ना बनाया हैं इन्हें।
 मैं तन नहीं हूँ इसलिए ही देह का कर्ता नहीं ॥१६२॥
 अप्रदेशी अणु एक प्रदेशमय अर अशब्द हैं।
 अर रूक्षता-स्निग्धता से बहुप्रदेशीरूप हैं ॥१६३॥
 परमाणु के परिणमन से इक-एक कर बढ़ते हुए।
 अनंत अविभागी न हो स्निग्ध अर रूक्षत्व से ॥१६४॥
 परमाणुओं का परिणमन सम-विषम अर स्निग्ध हो।
 अर रूक्ष हो तो बंध हो दो अधिक पर न जघन्य हो ॥१६५॥
 दो अंश चिकने अणु चिकने-रूक्ष हों यदि चार तो।
 हो बंध अथवा तीन एवं पाँच में भी बंध हो ॥१६६॥
 यदि बहुप्रदेशी कंध सूक्ष्म-थूल हों संस्थान में।
 तो भूजलादि रूप हों वे स्वयं के परिणमन से ॥१६७॥
 भरा है यह लोक सूक्ष्म-थूल योग्य-अयोग्य जो।
 कर्मत्व के वे पौद्गलिक उन खंध के संयोग से ॥१६८॥
 स्कन्ध जो कर्मत्व के हों योग्य वे जिय परिणति।
 पाकर करम में परिणमें न परिणमावे जिय उन्हें ॥१६९॥
 कर्मत्वगत जड़पिण्ड पुद्गल देह से देहान्तर।
 को प्राप्त करके देह बनते पुन-पुनः वे जीव की ॥१७०॥
 यह देह औदारिक तथा हो वैक्रियक या कार्मण।
 तेजस अहारक पाँच जो वे सभी पुद्गलद्रव्यमय ॥१७१॥
 चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है।
 जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है ॥१७२॥
 मूर्त पुद्गल बंधे नित स्पर्श गुण के योग से।
 अमूर्त आतम मूर्त पुद्गल कर्म बाँधे किसतरह ॥१७३॥
 जिसतरह रूपादि विरहित जीव जाने मूर्त को।
 बस उसतरह ही जीव बाँधे मूर्त पुद्गलकर्म को ॥१७४॥

प्राप्त कर उपयोगमय जिय विषय विविध प्रकार के।
 रुष-तुष्ट होकर मुग्ध होकर विविधविध बंधन करे ॥१७५॥
 जिस भाव से आगत विषय को देखे-जाने जीव यह।
 उसी से अनुरक्त हो जिय विविधविध बंधन करे ॥१७६॥
 स्पर्श से पुद्गल बंधे अर जिय बंधे रागादि से।
 जीव-पुद्गल बंधे नित ही परस्पर अवगाह से ॥१७७॥
 आतमा सप्रदेश है उन प्रदेशों में पुद्गला।
 परविष्ट हों अर बंधें अर वे यथायोग्य रहा करें ॥१७८॥
 रागी बाँधे कर्म छोटे राग से जो रहित है।
 यह बंध का संक्षेप है बस नियतनय का कथन यह ॥१७९॥
 राग-रुष अर मोह ये परिणाम इनसे बंध हो।
 राग है शुभ-अशुभ किन्तु मोह-रुष तो अशुभ ही ॥१८०॥
 पर के प्रति शुभभाव पुण पर अशुभ तो बस पाप है।
 पर दुःखक्षय का हेतु तो बस अनन्यगत परिणाम है ॥१८१॥
 पृथ्वी आदि थावरा त्रस कहे जीव निकाय हैं।
 वे जीव से हैं अन्य एवं जीव उनसे अन्य है ॥१८२॥
 जो न जाने इसतरह स्व और पर को स्वभाव से।
 वे मोह से मोहित रहे 'ये मैं हूँ' अथवा 'मेरा यह' ॥१८३॥
 निज भाव को करता हुआ निजभाव का कर्ता कहा।
 और पुद्गल द्रव्यमय सब भाव का कर्ता नहीं ॥१८४॥
 जीव पुद्गल मध्य रहते हुए पुद्गलकर्म को।
 जिनवर कहें सब काल में ना ग्रहे-छोड़े-परिणमे ॥१८५॥
 भवदशा में रागादि को करता हुआ यह आतमा।
 रे कर्मरज से कदाचित् यह ग्रहण होता छूटता ॥१८६॥
 रागादियुत जब आतमा परिणमे अशुभ-शुभ भाव में।
 तब कर्मरज से आवरित हो विविध बंधन में पड़े ॥१८७॥

विशुद्धतम परिणाम से शुभतम करम का बंध हो ।
 संक्लेशतम से अशुभतम अर जघन हो विपरीत से ॥१३॥
 सप्रदेशी आतमा रुस-राग-मोह कषाययुत ।
 हो कर्मरज से लिप्त यह ही बंध है जिनवर कहा ॥१८८॥
 यह बंध का संक्षेप जिनवरदेव ने यतिवृन्द से ।
 नियतनय से कहा है व्यवहार इससे अन्य है ॥१८९॥
 तन-धनादि में 'मैं हूँ यह' अथवा 'ये मेरे हैं' सही ।
 ममता न छोड़े वह श्रमण उनमार्गी जिनवर कहें ॥१९०॥
 पर का नहीं ना मेरे पर मैं एक ही ज्ञानात्मा ।
 जो ध्यान में इस भाँति ध्यावे है वही शुद्धात्मा ॥१९१॥
 इसतरह मैं आतमा को ज्ञानमय दर्शनमयी ।
 ध्रुव अचल अवलंबन रहित इन्द्रियरहित शुध मानता ॥१९२॥
 अरि-मित्रजनधन्य-धान्यसुख-दुखदेहकुछभी ध्रुव नहीं ।
 इस जीव के ध्रुव एक ही उपयोगमय यह आतमा ॥१९३॥
 यह जान जो शुद्धातमा ध्यावें सदा परमातमा ।
 दुठ मोह की दुर्ग्रन्थि का भेदन करें वे आतमा ॥१९४॥
 मोहग्रन्थी राग-रुष तज सदा ही सुख-दुःख में ।
 समभाव हो वह श्रमण ही बस अखयसुख धारण करें ॥१९५॥
 आत्मध्याता श्रमण वह इन्द्रियविषय जो परिहरे ।
 स्वभावथित अवरुद्ध मन वह मोहमल का क्षय करे ॥१९६॥
 घन घातिकर्म विनाश कर प्रत्यक्ष जाने सभी को ।
 संदेहविरहित ज्ञेय ज्ञायक ध्यावते किस वस्तु को ॥१९७॥
 अतीन्द्रिय जिन अनिन्द्रिय अर सर्व बाधा रहित हैं ।
 चहुँ ओर से सुख-ज्ञान से समृद्ध ध्यावे परमसुख ॥१९८॥
 निर्वाण पाया इसी मग से श्रमण जिन जिनदेव ने ।
 निर्वाण अर निर्वाणमग को नमन बारंबार हो ॥१९९॥

इसलिए इस विधि आतमा ज्ञायकस्वभावी जानकर ।
 निर्ममत्व में स्थित मैं सदा ही भाव ममता त्याग कर ॥२००॥
 सुशुद्धदर्शनज्ञानमय उपयोग अन्तरलीन जिन ।
 बाधारहित सुखसहित साधु सिद्ध को शत्-शत् नमन ॥१४॥
 चरणानुयोगसूचक चूलिका महाधिकार
 आचरणप्रज्ञापनाधिकार
 हे भव्यजन ! यदि भवदुखों से मुक्त होना चाहते ।
 परमेष्ठियों को कर नमन श्रामण्य को धारण करो ॥२०१॥
 वृद्धजन तिय-पुत्र-बंधुवर्ग से ले अनुमति ।
 वीर्य-दर्शन-ज्ञान-तप-चारित्र अंगीकार कर ॥२०२॥
 रूप कुल वयवान गुणमय श्रमणजन को इष्ट जो ।
 ऐसे गणी को नमन करके शरण ले अनुग्रहीत हो ॥२०३॥
 रे दूसरों का मैं नहीं ना दूसरे मेरे रहे ।
 संकल्प कर हो जितेन्द्रिय नम्रत्व को धारण करें ॥२०४॥
 शृंगार अर हिंसा रहित अर केशलुंचन अकिंचन ।
 यथाजातस्वरूप ही जिनवरकथित बहिलिंग है ॥२०५॥
 आरंभ-मूर्छा से रहित पर की अपेक्षा से रहित ।
 शुधयोग अर उपयोगसेजिनकथित अंतरलिंग है ॥२०६॥ युग्मम् ॥
 जो परमगुरुनम लिंग दोनों प्राप्त कर व्रत आचरें ।
 आत्मथित वे श्रमण ही बस यथायोग्य क्रिया करें ॥२०७॥
 व्रत समिति इन्द्रिय रोध लुंचन अचेलक अस्नान व्रत ।
 ना दन्त-धोवन क्षिति-शयन अर खड़े हो भोजन करें ॥२०८॥
 दिन में करें इकबार ही ये मूलगुण जिनवर कहें ।
 इनमें रहे नित लीन जो छेदोपथापक श्रमण वह ॥२०९॥ युग्मम् ॥
 दीक्षा समय जो दें प्रव्रज्या वे गुरु दो भेदयुत ।
 छेदोपथापक श्रमण हैं अर शेष सब निर्यापका ॥२१०॥

यदि यत्नपूर्वक रहें पर देहिक क्रिया में छेद हो ।
 आलोचना द्वारा अरे उसका करें परिमार्जन ॥२११॥
 किन्तु यदि यति छेद में उपयुक्त होकर भ्रष्ट हों ।
 तो योग्य गुरु के मार्गदर्शन में करें आलोचना ॥२१२॥युग्मम्॥
 हे श्रमणजन! अधिवास में या विवास में बसते हुए ।
 प्रतिबंध के परिहारपूर्वक छेदविरहित ही रहो ॥२१३॥
 रे ज्ञान-दर्शन में सदा प्रतिबद्ध एवं मूलगुण ।
 जो यत्नतः पालन करें बस हैं वही पूरण श्रमण ॥२१४॥
 आवास में उपवास में आहार विकथा उपधि में ।
 श्रमणजन व विहार में प्रतिबंध न चाहें श्रमण ॥२१५॥
 शयन आसन खड़े रहना गमन आदिक क्रिया में ।
 यदि अयत्नाचार है तो सदा हिंसा जानना ॥२१६॥
 प्राणी मरें या ना मरें हिंसा अयत्नाचार से ।
 तब बंध होता है नहीं जब रहें यत्नाचार से ॥२१७॥
 हो गमन ईर्यासमिति से पर पैर के संयोग से ।
 हों जीव बाधित या मरण हो फिर भी उनके योग से ॥१५॥*
 ना बंध हो उस निमित्त से ऐसा कहा जिनशास्त्र में ।
 क्योंकि मूर्च्छा परिग्रह अध्यात्म के आधार में ॥१६॥युग्मम्॥*
 जलकमलवत् निर्लेप हैं जो रहें यत्नाचार से ।
 पर अयत्नाचारि तो षट्काय के हिंसक कहे ॥२१८॥
 बंध हो या न भी हो जिय मरे तन की क्रिया से ।
 पर परिग्रह से बंध हो बस उसे छोड़े श्रमणजन ॥२१९॥
 यदि भिक्षु के निरपेक्ष न हो त्याग तो शुद्धि न हो ।
 तो कर्मक्षय हो किसतरह अविशुद्ध भावों से कहो ॥२२०॥
 वस्त्र वर्तन यति रखें यदि यह किसी के सूत्र में ।
 ही कहा हो तो बताओ यति निरारंभी किसतरह ॥१७॥*

रे वस्त्र वर्तन आदि को जो ग्रहण करता है श्रमण ।
 नित चित्त में विक्षेप प्राणारंभ नित उसके रहे ॥१८॥*
 यदि वस्त्र वर्तन ग्रहे धोवे सुखावे रक्षा करे ।
 खो न जावे डर सतावे सतत ही उस श्रमण को ॥१९॥*
 उपधि के सद्भाव में आरंभ मूर्च्छा असंयम ।
 हो फिर कहो परद्रव्यरत निज आत्म साथे किसतरह ॥२२१॥
 छेद न हो जिसतरह आहार लेवे उसतरह ।
 हो विसर्जन नीहार का भी क्षेत्र काल विचार कर ॥२२२॥
 मूर्च्छादि उत्पादन रहित चाहे जिसे न असंयमी ।
 अत्यल्प हो ऐसी उपधि ही अनिन्दित अनिषिद्ध है ॥२२३॥
 जब देह भी है परिग्रह उसको सजाना उचित ना ।
 तो किसतरह हो अन्य सब जिनदेव ने ऐसा कहा ॥२२४॥
 लोक अर परलोक से निरपेक्ष है जब यह धरम ।
 पृथक् से तब क्यों कहा है नारियों के लिंग को ॥२०॥*
 नारियों को उसी भव में मोक्ष होता ही नहीं ।
 आवरणयुत लिंग उनको इसलिए ही कहा है ॥२१॥*
 प्रकृतिजन्य प्रमादमय होती है उनकी परिणति ।
 प्रमादबहुला नारियों को इसलिए प्रमदा कहा ॥२२॥*
 नारियों के हृदय में हों मोह द्वेष भय घृणा ।
 माया अनेकप्रकार की बस इसलिए निर्वाण ना ॥२३॥*
 एक भी है दोष ना जो नारियों में नहीं हो ।
 अंग भी ना ढके हैं अतएव आवरणी कही ॥२४॥*
 चित्त चंचल शिथिल तन अर रक्त आवे अचानक ।
 और उनके सूक्ष्म मानव सदा ही उत्पन्न हों ॥२५॥*
 योनि नाभि काँख एवं स्तनों के मध्य में ।
 सूक्ष्म जिय उत्पन्न होते रहें उनके नित्य ही ॥२६॥*

अरे दर्शन शुद्ध हो अर सूत्र अध्ययन भी करें।
घोर चारित्र आचरे पर ना नारियों के निर्जरा ॥२७॥*
इसलिए उनके लिंग को बस सपट ही जिनवर कहा।
कुलरूप वययुत विज्ञ श्रमणी कही जाती आर्यिका ॥२८॥*
त्रिवर्णी नीरोग तप के योग्य वय से युक्त हों।
सुमुख निन्दा रहित नर ही दीक्षा के योग्य हैं ॥२९॥*
रतनत्रय का नाश ही है भंग जिनवर ने कहा।
भंगयुत हो श्रमण तो सल्लेखना के योग्य ना ॥३०॥*
जन्मते शिशुसम नगन तन विनय अर गुरु के वचन।
आगम पठन हैं उपकरण जिनमार्ग का ऐसा कथन ॥२२५॥
इहलोक से निरपेक्ष यति परलोक से प्रतिबद्ध ना।
अर कषायों से रहित युक्ताहार और विहार में ॥२२६॥
चार विकथा कषायें अर इन्द्रियों के विषय में।
रत श्रमण निद्रा-नेह में परमत्त होता है श्रमण ॥३१॥*
अरे भिक्षा मुनिवरो की ऐसणा से रहित हो।
वे यतीगण ही कहे जाते हैं अनाहारी श्रमण ॥२२७॥
तनमात्र ही है परिग्रह ममता नहीं है देह में।
शृंगार बिन शक्ति छुपाये बिना तप में जोड़ते ॥२२८॥
इकबार भिक्षाचरण से जैसा मिले मधु-मांस बिन।
अधपेट दिन में लें श्रमण बस यही युक्ताहार है ॥२२९॥
पकते हुए अर पके कच्चे माँस में उस जाति के।
सदा ही उत्पन्न होते हैं निगोदी जीव वस ॥३२॥*
जो पके कच्चे माँस को खावें छुयें वे नारि-नर।
जीवजन्तु करोड़ों को मारते हैं निरन्तर ॥३३॥*
जिनागम अविरुद्ध जो आहार होवे हस्तगत।
नहीं देवे दूसरों को दे तो प्रायश्चित योग्य है ॥३४॥*

मूल का न छेद हो इस तरह अपने योग्य ही।
वृद्ध बालक श्रान्त रोगी आचरण धारण करें ॥२३०॥
श्रमण श्रम क्षमता उपधि लख देश एवं काल को।
जानकर वर्तन करें तो अल्पलेपी जानिये ॥२३१॥
मोक्षमार्गप्रज्ञापनाधिकार
स्वाध्याय से जो जानकर निज अर्थ में एकाग्र हैं।
भूतार्थ से वे ही श्रमण स्वाध्याय ही बस श्रेष्ठ है ॥२३२॥
जो श्रमण आगमहीन हैं वे स्व-पर को नहीं जानते।
वे कर्मक्षय कैसे करें जो स्व-पर को नहीं जानते ॥२३३॥
साधु आगमचक्षु इन्द्रियचक्षु तो सब लोक है।
देव अवधिचक्षु अर सर्वात्मचक्षु सिद्ध हैं ॥२३४॥
जिन-आगमों से सिद्ध हों सब अर्थ गुण-पर्यय सहित।
जिन-आगमों से ही श्रमणजन जानकर सार्धें स्वहित ॥२३५॥
जिनागम अनुसार जिनकी दृष्टि न वे असंयमी।
यह जिनागम का कथन है वे श्रमण कैसे हो सकें ॥२३६॥
जिनागम से अर्थ का श्रद्धान ना सिद्धि नहीं।
श्रद्धान हो पर असंयत निर्वाण को पाता नहीं ॥२३७॥
विज्ञ तीनों गुप्ति से क्षय करें स्वासोच्छ्वास में।
ना अज्ञ उतने कर्म नाशे भव हजार करोड़ में ॥२३८॥
देहादि में अणुमात्र मूर्च्छा रहे यदि तो नियम से।
वह सर्व आगम धर भले हो सिद्धि वह पाता नहीं ॥२३९॥
अनारंभी त्याग विषयविरक्त और कषायक्षय।
ही तपोधन संत का सम्पूर्णतः संयम कहा ॥३५॥*
तीन गुप्ति पाँच समिति सहित पंचेन्द्रियजयी।
ज्ञानदर्शनमय श्रमण ही जितकषायी संयमी ॥२४०॥

कांच-कंचन बन्धु-अरि सुख-दुःख प्रशंसा-निन्द में।
 शुद्धोपयोगी श्रमण का समभाव जीवन-मरण में॥२४१॥
 ज्ञानदर्शनचरण में युगपत सदा आरूढ़ हो।
 एकाग्रता को प्राप्त यति श्रामण्य से परिपूर्ण हैं॥२४२॥
 अज्ञानि परद्रव्याश्रयी हो मुग्ध राग-द्वेषमय।
 जो श्रमण वह ही बाँधता है विविध विध के कर्म सब॥२४३॥
 मोहित न हो जो लोक में अर राग-द्वेष नहीं करें।
 वे श्रमण ही नियम से क्षय करें विध-विध कर्म सब॥२४४॥

शुभोपयोगप्रज्ञापनाधिकार

शुद्धोपयोगी श्रमण हैं शुभोपयोगी भी श्रमण।
 शुद्धोपयोगी निरास्रव हैं आस्रवी हैं शेष सब॥२४५॥
 वात्सल्य प्रवचनरतों में अर भक्ति अर्हत् आदि में।
 बस यही चर्या श्रमणजन की कही शुभ उपयोग है॥२४६॥
 श्रमणजन के प्रति बंदन नमन एवं अनुगमन।
 विनय श्रमपरिहार निन्दित नहीं हैं जिनमार्ग में॥२४७॥
 उपदेश दर्शन-ज्ञान-पूजन शिष्यजन का परिग्रहण।
 और पोषण ये सभी हैं रागियों के आचरण॥२४८॥
 तनविराधन रहित कोई श्रमण पर उपकार में।
 नित लगा हो तो जानना है राग की ही मुख्यता॥२४९॥
 जो श्रमण वैयावृत्ति में छहकाय को पीड़ित करें।
 वे गृही ही हैं क्योंकि यह तो श्रावकों का धर्म है॥२५०॥
 दया से सेवा सदा जो श्रमण-श्रावकजनों की।
 करे वह भी अल्पलेपी कहा है जिनमार्ग में॥२५१॥
 भूखे-प्यासे दुःखीजन लख दुखित मन से जो पुरुष।
 दया से हो द्रवित बस वह भाव अनुकंपा कहा॥३६॥*

श्रम रोग भूखरु प्यास से आक्रान्त हैं जो श्रमणजन।
 उन्हें लखकर शक्ति के अनुसार वैयावृत करो॥२५२॥
 ग्लान गुरु अर वृद्ध बालक श्रमण सेवा निमित्त से।
 निंदित नहीं शुभभावमय संवाद लौकिकजनों से॥२५३॥
 प्रशस्त चर्या श्रमण के हो गौण किन्तु गृहीजन।
 के मुख्य होती है सदा अर वे उसी से सुखी हों॥२५४॥
 एकविध का बीज विध-विध भूमि के संयोग से।
 विपरीत फल शुभभाव दे बस पात्र के संयोग से॥२५५॥
 अज्ञानियों से मान्य व्रत-तप देव-गुरु-धर्मादि में।
 रत जीव बाँधे पुण्यहीनरु मोक्ष पद को ना लहें॥२५६॥
 जाना नहीं परमार्थ अर रत रहें विषय-कषाय में।
 उपकार सेवादान दें तो जाय कुनर-कुदेव में॥२५७॥
 शास्त्र में ऐसा कहा कि पाप विषय-कषाय हैं।
 जो पुरुष उनमें लीन वे कल्याणकारक किसतरह॥२५८॥
 समभाव धार्मिकजनों में निष्पाप अर गुणवान हैं।
 सन्मार्गगामी वे श्रमण परमार्थ मग में मगन हैं॥२५९॥
 शुद्ध अथवा शुभ सहित अर अशुभ से जो रहित हैं।
 वे तार देते लोक उनकी भक्ति से पुणबंध हो॥२६०॥
 जब दिखें मुनिराज पहले विनय से वर्तन करो।
 भेद करना गुणों से पश्चात् यह उपदेश है॥२६१॥
 गुणाधिक में खड़े होकर अंजलि को बाँधकर।
 ग्रहण-पोषण-उपासन-सत्कार कर करना नमन॥२६२॥
 विशारद सूत्रार्थ संयम-ज्ञान-तप में आढ्य हों।
 उन श्रमणजन को श्रमणजन अति विनय से प्रणमन करें॥२६३॥
 सूत्र संयम और तप से युक्त हों पर जिनकथित।
 तत्त्वार्थ को ना श्रद्धहैं तो श्रमण ना जिनवर कहें॥२६४॥

जो श्रमणजन को देखकर विद्वेष से वर्तन करें।
 अपवाद उनका करें तो चारित्र उनका नष्ट हो॥२६५॥
 स्वयं गुण से हीन हों पर जो गुणों से अधिक हों।
 चाहे उनसे नमन तो फिर अनंतसंसारी हैं वे॥२६६॥
 जो स्वयं गुणवान हों पर हीन को वंदन करें।
 दृग्मोह में उपयुक्त वे चारित्र से भी भ्रष्ट हैं॥२६७॥
 सूत्रार्थविद जितकषायी अर तपस्वी हैं किन्तु यदि।
 लौकिकजनों की संगति न तजे तो संयत नहीं॥२६८॥
 निर्ग्रन्थ हों तपयुक्त संयमयुक्त हों पर व्यस्त हों।
 इहलोक के व्यवहार में तो उन्हें लौकिक ही कहा॥२६९॥
 यदि चाहते हो मुक्त होना दुखों से तो जान लो।
 गुणाधिक या समान गुण से युक्त की संगति करो॥२७०॥

पंचरत्न अधिकार

अयथार्थग्राही तत्त्व के हों भले ही जिनमार्ग में।
 कर्मफल से आभरित भवभ्रमे भावीकाल में॥२७१॥
 यथार्थग्राही तत्त्व के अर रहित अयथाचार से।
 प्रशान्तात्मा श्रमण वे ना भवभ्रमे चिरकाल तक॥२७२॥
 यथार्थ जाने अर्थ दो विध परिग्रह को छोड़कर।
 ना विषय में आसक्त वे ही श्रमण शुद्ध कहे गये॥२७३॥
 है ज्ञान-दर्शन शुद्धता निज शुद्धता श्रामण्य है।
 हो शुद्ध को निर्वाण शत-शत बार उनको नमन है॥२७४॥
 जो श्रमण-श्रावक जानते जिनवचन के इस सार को।
 वे प्राप्त करते शीघ्र ही निज आत्मा के सार को॥२७५॥